प्रकाशित: प्रकाशित : 12 अप्रैल 2019 को दैनिक जागरण में प्रकाशित

यूपी में भाजपा के खिलाफ असफल दिख रहा गठबंधन, ये है चुनावी गठबंधन का गणित

शिवानंद द्विवेदी –

वीपी सिंह से एक बार किसी ने कहा कि देश में आपका जलवा है , आप अपनी पार्टी क्यों नहीं बना लेते? इसका जवाब वीपी सिंह ने कुछ इस तरह से दिया कि आप देख रहे हैं कि यहां चारों तरफ समर्थन की बरसात हो रही है और आप कटोरे में पानी इकट्ठा करने की सलाह दे रहे हैं ! यह उसी दौर की बात है जब वीपी सिंह के संदर्भ में नारा चल रहा था , 'राजा नहीं फकीर है, देश की तकदीर है।' इस नारे का मजमून यह था कि मानो देश को एक ऐसा मसीहा मिला है , जो जन-मानस के पटल पर बैठा है। लेकिन समर्थन की दरी जब पैरों के नीचे से खिसकी तो विश्वनाथ प्रताप सिंह की जमीन खिसक गई। सरकार गिर चुकी थी।

शायद तब वीपी सिंह ने जरूर सोचा होगा कि समर्थन होना और एक दल का जनाधार मजबूत करने के बीच क्या फर्क होता है। शायद वीपी सिंह ने दरी को ही जमीन समझ लिया था। जिस दल ने उस समय लोकप्रियता के चरम पर रहे लालकृष्ण आडवाणी की गिरफ्तारी के विरोध में वीपी सिंह के पैरों तले बिछी हुई सत्ता की दरी खींची थी , वह दल आज भारत ही नहीं, वरन दुनिया का सबसे बड़ा दल है। खैर, इस बात को लगभग तीन दशक हो चुके हैं। गंगा और यमुना में बहुत पानी बह चुका है। 'तिलक, तराजू और तलवार' वाले नारे से लेकर 'हाथी नहीं गणेश हैं, ब्रह्मा विष्णु महेश हैं' तक अनेक नारे सियासत में गरम होकर फिर नरम पड़ चुके हैं। मिनी लोकसभा कही जाने वाली यूपी में जो 'सोशल' है वह इंजीनियरिंग की भाषा में 'मेकानिक्स' से अधिक 'रसायन' के घोल की तरह है।

आदर्श आचार संहिता लागू हो चुकी है , घोषणापत्र भी जारी हो चुके हैं और सियासी कसरत जारी है। यूपी की राजनीति एक नए और रोचक मोड़ पर है। तीन दशक के इतिहास में लगे तमाम नारे एक-दूसरे से मुंह चुरा रहे हैं। अब भला उत्तर प्रदेश की राजनीति में कौन सुनना चाहेगा 'चढ़ गुंडों की छाती पर, मुहर मारो हाथी पर!' दरअसल उस समय जो 'गुंडा' विशेषण हुआ करता था, वह अब खास दोस्त हो गया है।
इतिहास ने करवट ली है और राजनीति के रणनीतिकारों ने नए रासायनिक प्रयोगों को सियासत की परखनली में डालकर देखना- परखना शुरू कर दिया है। रसायन शास्त्र के हिसाब से हाइड्रोजन और ऑक्सीजन के मिलने से पानी बनता है। लेकिन पानी का रंग और स्वाद न तो हाइड्रोजन जैसा होता है और न ही हमें उसमें ऑक्सीजन की महक आती है। रसायन शास्त्र के इस सूत्र को समझने में राजनीतिक पंडित कई बार चूक कर जाते हैं। अब जरा यूपी की राजनीति में बने नए समीकरणों को समझने की कोशिश करते हैं।

सपा-बसपा-रालोद ने गठबंधन की घोषणा करते हुए क्रमश: 37, 38 और और तीन सीटें बांट ली। शुरुआत में गठबंधन द्वारा दो सीटें कांग्रेस के लिए छोड़ देना , अप्रत्यक्ष रूप से कांग्रेस को अपमानित करने जैसा ही रहा। मानो , गठबंधन वहां लड़ जाए तो अमेठी से राहुल और रायबरेली से सोनिया गांधी के लिए जीतना आसान न हो। शायद सपा -बसपा गठबंधन को यह आत्मविश्वास रहा हो कि कांग्रेस इस चुनाव में गठबंधन को बिना शर्त वॉकओवर देने से ज्यादा कुछ करने की स्थिति में नहीं है। लेकिन प्रियंका वाड्रा को उतारकर कांग्रेस ने सपा -बसपा के मंसूबों पर पानी फेर दिया है। इतना तो तय हो गया है कि कांग्रेस सपा -बसपा को वॉकओवर नहीं देने जा रही है।

गठबंधन का चुनावी गणित

उत्तर प्रदेश में सपा-बसपा गठबंधन को लेकर विश्लेषकों के एक वर्ग ने खासा उत्साह दिखाया। कहना गलत नहीं होगा कि इसमें भी बेहद जल्दबाजी दिखाई गई है। गठबंधन की सफलताओं का आकलन करने में विश्लेषकों ने रसायन शास्त्र के नियमों से ज्यादा अंकगणित के फार्मूलों पर भरोसा जताने की चूक की है। भारतीय जनता पार्टी के लिए चुनौती की बात तो समझ में आती है, लेकिन बुरी हार की भविष्यवाणी अतिरंजना से अधिक कुछ भी नहीं है।

दरअसल हिंदी हार्टलैंड कहे जाने वाले देश के इस बड़े राज्य उत्तर प्रदेश की चुनावी राजनीति को समझने वाले बखूबी जानते हैं कि यहां जातिवाद का असर खूब रहता है। इसके पीछे मूल वजह 1980 के दशक के बाद जाति आधारित दलों का उभार प्रमुख वजह है। लेकिन वर्ष 2014 के चुनाव में जातीय अंकगणित की दीवारों में एक मोटी दरार देखी गई। वर्ष 2009 से ही 17 फीसद वोट तक सिमटने वाली भाजपा ने 2014 में 42 फीसद से ज्यादा वोट हासिल किया। इतना बड़ा मतदाता वर्ग भाजपा के साथ पहले कभी नहीं जुड़ा था। ये इजाफा तब हुआ जब बसपा और सपा के वोटबैंक पर अधिक असर नहीं पड़ा था। करारी हार के बावजूद भी दोनों दलों ने अपना वोटबैंक बचाए रखा था। इसके बाद वर्ष 2017 के राज्य विधानसभा में स्थिति कमोबेश वैसी ही रही

जाति आधारित वोटबैंक

पिछले पांच साल में उत्तर प्रदेश के राजनीतिक मिजाज में सबसे बड़ा बदलाव यही आया है कि जातिवाद आधारित वोटबैंक के खांचों में लंबे समय से चलती आ रही क्षेत्रीयता की राजनीति के बरक्स एक नए किस्म के वोटबैंक ने आकार लिया है। इस नए वोट बैंक की बदौलत जातिवाद की दीवार को दरकाने में नरेंद्र मोदी और अमित शाह के दौर की भाजपा सफल रही है। आज जातिवाद के दायरे चुनावों में उस तरह असरकारी नहीं हैं , जितना पहले हुआ करते थे। अब भाजपा ने विकास, सुशासन और पारदर्शिता की बदौलत प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में सभी वर्गों तक अपनी पहुंच बनाने में कामयाबी हासिल की है।

इस नए वोटबैंक में बड़ी तादाद उनकी है जिन्हें उज्ज्वला, आवास तथा मुद्रा जैसी कल्याणकारी योजनाओं का लाभ मिला है। कहा जा सकता है कि 17 फीसद से 40 फीसद तक का सफर तय करने में मोदी सरकार की नीतियों और भाजपा के संगठन में सभी वर्गों के प्रतिनिधित्व की संभावना का बढ़ना, इस नए वोटबैंक की वजह है। अब जब 2019 के चुनावी मुहाने पर देश खड़ा है तो उत्तर प्रदेश की त्रिकोणीय दिख रही लड़ाई को समझना जरूरी है। कांग्रेस का अकेले चलना उसके अपने अस्तित्व की मजबूरी थी, क्योंकि उसके पास खोने के लिए कुछ भी नहीं है। इसके पीछे उसकी अपनी गलतियां हैं, जो उसने इतिहास में की हैं। जहां तक महागठबंधन का प्रश्न है तो सपा और बसपा के पिछले मिले मतों का सीधा-सपाट जोड़ निकालकर जीत हार का आकलन एक अपरिपक्व विश्लेषण है।

वर्ष 2014 के लोकसभा चुनावों में इन दोनों दलों के मतों को जोड़ दें तो आंकड़ा 42 फीसद के आसपास पहुंचता है, जो इन दोनों दलों ने अलग-अलग लड़कर हासिल किए थे। वहीं अलग-अलग लड़ते हुए इन दोनों दलों- सपा और बसपा ने 44.4 फीसद वोट वर्ष 2017 में हासिल किए थे। जबकि 2014 में भाजपा का मत फीसद सपा-बसपा के संयुक्त वोट से ज्यादा है। विधानसभा चुनाव में भी यह उन दोनो के संयुक्त जोड़ से थोड़ा ही कम है।

भाजपा की मजबूती के सूत्र

अत: अंकगणित के लिहाज से भी भाजपा कमजोर नहीं नजर आती। लेकिन यह जानना जरूरी है कि क्या सपा और बसपा के मतों को अंकगणित के नियमों से जोड़ देने भर से जिस परिणाम का अनुमान सियासी पंडित कर रहे हैं, वह राजनीति के रसायन की तरह घुलने वाला भी है। दरअसल इन दोनों राजनीतिक दलों के मतदाता और स्थानीय संगठन के कैडर लंबे समय से एक-दूसरे के विरोधी रहे हैं। इन दोनों में स्वाभाविक मेल नहीं है।

विधानसभा स्तर पर तो सपा और बसपा के प्रभारी अभी भी इस गठबंधन पर अलग-अलग प्रचार कर रहे हैं, क्योंकि उनको भान है कि वर्ष 2022 के विधानसभा चुनावों तक इस गठबंधन का भविष्य नहीं है। रोचक बात यह भी है कि बसपा के जो मतदाता हैं, उनकी पहली च्वाइस बसपा है और दूसरी या तो कांग्रेस या भाजपा, लेकिन सपा कतई नहीं है। वहीं जो सपा का मतदाता है, उसकी दूसरी च्वाइस भाजपा और कांग्रेस है, न कि बसपा। ऐसे में अलग-अलग सीटों पर उन दोनों के मत ट्रांसफर कैसे होते हैं, यह देखना रोचक होगा। चूंकि शत-प्रतिशत ट्रांसफर की स्थिति में भी वे भाजपा से अधिक होते नहीं दिख रहे, लेकिन दोनों दलों के बीच उनके वोटबैंक का शत-प्रतिशत ट्रांसफर होना टेढ़ी खीर है।

इस लिहाज से देखें तो स्थानीय स्तर पर बेमेल के गठबंधन का असर गठबंधन की अपेक्षाओं के खिलाफ चला जाए तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए। वहीं कांग्रेस के पूरी दम-खम से लड़ने की वजह से लड़ाई का त्रिकोणीय हो जाना भी महागठबंधन से अत्यधिक आशा रखने वालों को

गलत साबित कर सकता है। यह लड़ाई दो और दो चार जैसी होती नहीं दिख रही है। त्रिकोणीय होती लड़ाई में जनाधार और संगठन के मोर्चे पर अगर किसी की जमीन सबसे ठोस और मजबूत है तो वह भारतीय जनता पार्टी है। गठबंधन की जमीन को विश्वनाथ प्रताप सिंह के पैरों के नीचे रखी उस दरी की तरह समझना चाहिए, जो अगर खिसकी तो जमीन खिसक जाएगी। इसलिए दरी को जमीन समझने की गलती शायद कुछ विश्लेषक न कर रहे हों। कांग्रेस के पैरों तले न जमीन और न दरी ही है, वह तो बस अपने जनाधार को बढ़ाने की लड़ाई लड़ रही है। उसके लिहाज से सिर्फ इतना ही अच्छा है कि इसने गठबंधन के सामने आत्मसमर्पण नहीं किया है।

क्या ध्रुवीकरण की रणनीति से पार होगी नैया

वर्ष 2014 के लोकसभा चुनाव के नतीजे पहले से कुछ कुछ तय माने जा रहे थे कि भाजपा गठबंधन की जीत होगी और नरेंद्र मोदी प्रधानमंत्री बनेंगे। वैसे उत्तर प्रदेश में भाजपा को प्राप्त सीटों का नतीजा जरूर चौंकाने वाला रहा था, क्योंकि सर्वाधिक लोकसभा क्षेत्रों वाले इस राज्य में भाजपा को ऐतिहासिक जीत मिलेगी, शायद इसका अंदाजा नहीं रहा होगा। विशेषज्ञों का यह कहना था कि राज्य में भाजपा के पक्ष में मतों का ध्रुवीकरण हुआ जिससे उसे इतना बड़ा फायदा हुआ और वर्ष 2017 के राज्य विधानसभा चुनाव में भी उसे इसका व्यापक फायदा मिला था।

हालांकि वर्तमान लोकसभा चुनाव के संदर्भ में यह माना जा रहा था कि यूपी में मतदाताओं का धार्मिक आधार पर ध्रुवीकरण होने की संभावना कम है और लोग विकास के मसले को ज्यादा तवज्जो दे सकते हैं, लेकिन मतदान के पहले चरण से ठीक तीन-चार दिन पहले मायावती ने जिस प्रकार एक समुदाय विशेष से अपना वोट उनके पक्ष में ही देने की अपील की, तो अगले ही दिन प्रदेश के मुखिया ने पश्चिमी उत्तर प्रदेश की कई रैलियों में अपने जवाब भाषण में जो बातें कहीं, उससे यह सुनिश्चित हो गया कि इस इलाके में ध्रुवीकरण होना तय है। लोकतंत्र के लिहाज से देखा जाए तो धार्मिक आधार पर मतदाताओं का ध्रुवीकरण होना सही नहीं कहा जा सकता है। लेकिन पश्चिमी उत्तर प्रदेश में यह कोई नया ट्रेंड नहीं है, यह काफी पहले से चला आ रहा है और कमोबेश कांग्रेस के शासनकाल में भी इसी तरह की रणनीति अपनाई जाती थी।

(सीनियर रिसर्च फैलो, डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी रिसर्च फाउंडेशन)